जोबनेर कृषि

जनवरी, 2023 वर्ष : 8 अंक : 1 प्रति अंक मूल्य 25 रुपये वार्षिक शुल्क : 250 रुपये

प्रसार शिक्षा निदेशालय

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय
जोबनेर, जिला–जयपुर (राज.) 303 329

गेहूं की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग, उनकी पहचान एवं उपचार

रामनिवास यादव एवं डॉ. प्रदीप सिंह शेखावत
पादप रोग विज्ञान
राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा, जयपुर

भारत देश में गेहूं का उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान है, लगभग देश के सभी राज्यों में किसान गेहूं की खेती करते हैं। गेहूं में बीमारियों सुत्रकृमियों तथा हानिकारक कीटों के कारण 5–10 प्रतिशत उपज की हानि होती है, और दानों तथा बीजों की गुणवत्ता भी खराब होती है। गेहूं की नई प्रजातियों को जारी करने से पहले रतुआ रोग तथा पर्ण झुलसा रोगों की प्रतिरोधिता के लिए कई साल तक जांचा जाता है तथा अन्य बीमारियों तथा कीटों के लिए कम से कम दो साल तक परीक्षण किया जाता है। इनमें से केवल उच्च प्रतिरोधिता वाली प्रजातियों की ही संस्तुति की जाती हैं। लेकिन एक ही प्रजाति में सभी प्रकार के रोगों, सूत्रकृमियों तथा हानिकारक कीटों के लिए प्रतिरोधिता होना एक कठिन कार्य हैं। समय के साथ–साथ रोगजनकों का भी विकास होता रहता है और प्रति में इनकी नवीनतम प्रजातियाँ विकसित होती रहती है। यह सभी रोग देश के विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार अलग–अलग होते है, इसलिए सभी रोगों की पूर्ण जानकारी दी जा रही है, जिससे गेहूं को रोगों से बचाया जा सके।

1. गेहूं का पर्ण रतुआ/भूरा रतुआ रोग :– यह पक्सीनिया रिकोंडिटा ट्रिटिसाई नामक कवक से होता है, तथा सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। इस रोग की शुरुआत उत्तर भारत की हिमालय तथा दक्षिण भारत की निलगिरी पहाड़ियों से शुरू होता है एवं वहां पर जीवित रहता है तथा वहाँ से हवा द्वारा मैदानी क्षेत्रों में फैलकर गेहूं की फसल को संक्रमित करता है।

रोग की पहचान :– इस रोग के लक्षण नारंगी रंग के सुई की नोक के बिन्दुओं के आकार के बिना क्रम के दानेदार– फफोंले पत्तियों की उपरी सतह पर उभरते हैं जो बाद में और घने होकर पूरी पत्ती और पर्ण वृन्तों पर फैल जाते हैं। रोगी पत्तियां जल्दी सुख जाती है जिससे प्रकाश संश्लेषण में भी कमी होती है और दाना हल्का बनता है। गर्मी बढ़ने पर इन धब्बों का रंग, पत्तियों की निचली सतह पर काला हो जाता है तथा इसके बाद यह रोग आगे नहीं फैलता है। इस रोग से गेहूं की उपज में 30 प्रतिशत तक की हानि हो सकती है ।

रोकथाम :– धब्बे दिखाई देने पर 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई.सी.) का एक या दो बार पत्तियों पर छिड़काव करें।

2. गेहूं का धारीदार रतुआ या पीला रतुआ रोग :– पत्तियों के उपरी सतह पर पीले रंग की धारियों के रूप में देखने को मिलते हैं जो कि धीरे–धीरे पूरी पत्तियों को पीला कर देते हैं तथा पीला पाउडर जमीन पर भी गिरने लगता है, इस स्थिति को गेहूं में पीला रतुआ कहते हैं। यदि यह रोग कल्ले निकलने वाली अवस्था या इससे पहले आ जाता है तो फसल में बाली नहीं आती है। यह रोग उत्तरी हिमालय की पहाड़ियों से उत्तरी मैदानी क्षेत्र में फैलता है। यह रोग तापमान बढने पर कम हो जाता है तथा पत्तियों पर पीली धारियां काले रंग की हो जाती है। मध्य तथा दक्षिणी क्षेत्रों में यह रोग अधिक तापमान की वजह से नहीं फैलता हैं।

रोकथाम :– इस रोग कि रोकथाम के लिए उन्नत प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें। मेन्कोजेब 75 डब्ल्यू. पी. 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

3. गेहूं का तना रतुआ या काला रतुआ रोग :– इस रोग का रोग जनक पक्सीनिया ग्रैमिनिस ट्रिटिसाई नामक कवक है। यह रोग प्रारम्भ में निलगिरी तथा पालनी पहाड़ियों से आता है तथा इसका प्रकोप दक्षिण तथा मध्य क्षेत्रों में अधिक होता है। उत्तरी क्षेत्र में यह रोग फसल पकने के समय पहुँचता है, इसलिए इसका प्रभाव नगण्य होता है। यह रोग अक्सर 20 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक तापमान पर फैलता है। इस रोग के लक्षण तने तथा पत्तियों पर चाकलेट रंग जैसा काला हो जाता है। दक्षिण तथा मध्य क्षेत्रों में जारी की नवीनतम प्रजातियाँ इस रोग के लिए प्रतिरोधी होती है। हालांकि लोक–1 जैसी प्रजातियों में यह रोग काफी लगता है। हाल के कुछ वर्षों में इस रोग की नयी प्रजाति यू.जी. 99 कुछ अफ्रीकी देशों में विकसित हो गयी है। यह सर्वप्रथम युगांडा (अफ्रीका) में वर्ष 1999 में पाई गयी लेकिन यह अभी तक भारत में नहीं पाई गई है।

4. गेहूं का करनाल बंट रोग :– यह रोग सर्वप्रथम 1931 में करनाल (हरियाणा) से रिपोर्ट किया गया था तथा वर्तमान में विश्व के अन्य देशों में भी पाया जाता है। भारत में यह रोग अधिक तापमान तथा उष्ण जलवायु वाले राज्यों जैसे कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, गुजरात तथा मध्यप्रदेश में नहीं पाया जाता तथा इसका प्रकोप अपेक्षात ठंडे प्रदेशों जैसे जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखंड के मैदानी इलाके पंजाब, हरियाणा , उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी राजस्थान में अधिक होता है। इस रोग का कारक एक कवक टिलेसिया इंडिका है। यह रोगजनक मृदा में रहता है तथा संक्रमित बीज इस रोग को नये क्षेत्रों में फैलाते हैं। इस रोग से दानों के अन्दर काला चूर्ण बन जाता है तथा अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। विश्व में कई गेहूं का आयत करने वाले देश, जहाँ पर यह रोग नहीं है, गेहूं को पुर्न रूप से करनाल बंट मुक्त होने पर जोर देते हैं तथा इसके कारण अंतराष्ट्रीय अनाज व्यापर प्रभावित होता है।

रोकथाम :– इस रोग कि रोकथाम के लिए बीज को थाइरम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बोयें। उन्नत प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करें। रोकथाम हेतु खड़ी फसल में प्रोपिकोनोजोल 25 ई.सी. 0.1 प्रतिशत घोल का दो बार (15 दिन के अंतराल) छिड़काव डफ अवस्था में करें।

5. गेहूं का खुला कंडुआ या लूज स्मट रोग :– यह रोग आन्तरिक रूप से संक्रमित बीज से पैदा होता है। इसका रोग जनक एक कवक अस्टीलैगो सेजेटम प्रजाति ट्रिटिसाई बीज के भ्रूण भाग में छिपा रहता है तथा संक्रमित बीज ऊपर से देखने में बिल्कुल स्वस्थ बीजों की तरह ही दिखाई देता है। इस रोग से प्रति वर्ष उत्तर भारत में गेहूं कि उपज में 1–2 प्रतिशत की हानि होती है। इस रोग के लक्षण बाली आने पर ही दिखाई देते हैं। रोगी पौधों की बालियों में दानों की जगह रोग जनक के रोगकंड (स्पोर्स) काले पाउडर के रूप में पाये जाते हैं जो कि हवा से उड़कर अन्य स्वस्थ बालियों में बन रहे बीजों को भी संक्रमित कर देते हैं। इस प्रकार रोग आगे आने वाली फसल में पहुंच जाता है। प्राय किसान भाई इस तरह से संक्रमित बीज से अनजान रहते हैं तथा बीजोपचार से चुक जाते हैं तथा बाद में उसकी फसल में इस रोग की कोई रोकथाम सम्भव नहीं होती है।

रोकथाम :– इस रोग कि रोकथाम के लिए रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला दें। बीजों को कार्बोक्सिन 75 डब्लू.पी. 1.5 ग्राम या कार्बेन्डाजिम 50 डब्लू.पी. 1.0 ग्राम या टेब्यूकोनाजोल 2.0 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार कर बुवाई करें।

6. गेहूं का पर्ण झुलसा या लीफ ब्लाईट रोग :– यह रोग मुख्यतः बाईपोलेरिस सोरोकिनियाना नामक कवक से पैदा होता है। यह रोग सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है लेकिन इस रोग का प्रकोप नम तथा गर्म जलवायु वाले उत्तर पूर्वी क्षेत्र में अधिक होता है। इस रोग के लक्षण पौधे के सभी भागों में पाये जाते हैं तथा पत्तियों पर प्रमुख होते हैं। प्रारम्भ में रोग के लक्षण भूरे रंगे के नाव के आकार के छोटे धब्बों के रूप में उभरते हैं, जो कि बड़े होकर पत्तियों के सम्पूर्ण भाग या कुछ भाग को झुलसा देते हैं तथा ऊतक मर जाते हैं और हरा रंग नष्ट हो जाता है।

रोकथाम :– इस रोग से बचाने के लिए जनवरी के प्रथम सप्ताह से 15 दिन के अंतराल पर सवा किलो मैंकोजेब प्रति हैक्टेयर का 6,000 लीटर पानी में घोल बनाकर 3–4 बार छिड़काव करें। इसके अलावा 2.5 ग्राम/किलोग्रम बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू.पी.) के साथ बीजोपचार करें। खेत में जमाव न रहने दें।

7. गेहूं का चूर्णिल आसिता या पाउडरी मिल्ड्यू रोग :– यह रोग ठंडे प्रदेशों में

पाया जाता है तथा ब्लुमेरिया ग्रैमेनिस ट्रिटिसाई नामक कवक से होता है। यह रोगजनक ग्रीष्म काल में उत्तर के पहाड़ों पर जीवित रहता है तथा बाद में फसल अवधि में उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में फैल कर गेहूं की फसल को संक्रमित करता है। इस रोग से पत्तियों की उपरी सतह पर गेहूं के आटे के रंग के सफेद धब्बे पड़ जाते हैं जो कि उपयुक्त परिस्थितियाँ होने पर बालियों तक पहुंच जाते हैं। तापमान बढने पर इन सफेद भूरे धब्बों में ऑलपिन की नोंक के आकार के गहरे भूरे क्लिस्टोथिसिया बन जाते हैं तथा इस रोग का फैलाव रुक जाता है।

रोकथाम :- रोग के संक्रमण से दाने बनने की अवस्था तक 0.1 प्रतिशत प्रोपिकोनेजोल (टिल्ट 25 ई. सी.) का पत्तियों पर छिड़काव करें। छायादार खेत में गेहूं की बुआई न करें। उत्तर पर्वतीय क्षेत्रों में एचएस 542, वीएल 829, वीएल 907, वीएल 907, एचएस 507, एचएस 490, इत्यादी किस्मों का प्रयोग करें।

8. ध्वज कंड या फ्लैग समट :- यह रोग उत्तरी भागों में जहाँ पर जमीन बलुई होती है, ज्यादा फैलता है तथा पंजाब तथा हरियाणा में इस प्रकार की जमीनों में यह रोग 10 प्रतिशत तक पाया जाता है। यह रोग एक कवक यूरोसिस्टिस एग्रोपाइरी से होता है तथा रोगजनक संक्रमित खेत में ही होता है। इस रोग के कारण संक्रमित पौधों की पत्तियां अधिक लम्बी, मुड़ी हुई तथा प्रारम्भ में चंडी जैसे रंग की दिखाई देती है जोकि बाद में कवक बीजाणुओं के बनने से काली होकर टूट जाती है। एसे पौधों में बालियाँ नहीं बनती है।

रोकथाम :- 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू.पी.) या कार्बेडिजिम (बाविस्टीन 50 डब्ल्यू.पी.) से अथवा 1.25 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से टेब्युकोनेजोल 2 डी. एस. (रैकिस्ल) के साथ बीजोपचार करें। पहले साल जिन सुग्राही किस्मों में यह ध्वज कन्द देखा गया हो, उनकी बुआई न करें।

9. पहाड़ी बंट या हिल बंट :- यह बीमारी प्रमुख रूप से उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती है तथा टिलेसिया फोइटिडा एवं टिलेसिया कैरीज नामक कवकों के कारण होती है। इस रोग में रोगी बालियों में दानों की जगह कवक की काली रंग की संरचनाए बन जाती है जो कि थ्रेशिंग के समय टूटकर कवक बीजाणुओं को स्वस्थ बीजों पर फैला देती है।

रोकथाम :- 25 प्रतिशत कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू. पी.) से बीजोपचार करें। रोगरोधी किस्मों का प्रयोग करें बुआई के लिए संक्रमित खेत से बीज न लें।

शुष्क क्षेत्रों में खेती के लिए हाइड्रोजेल की उपयोगिता

देवी लाल किकरालियाँ1, माया चौधरी2 और अनुज कुमार3
1विद्या वाचस्पति छात्र, शस्य विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर
2स्नातकोत्तर छात्रा, कीट विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर
3विद्या वाचस्पति छात्र, शस्य विज्ञान विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

राजस्थान समेत देश के कई हिस्सों में सूखा पड़ने की वजह से प्रत्येक वर्ष फसलें चौपट होती हैं। कई जगहों पर पेयजल का भी संकट है। देश की बढ़ती आबादी के लिए पेयजल के अलावा बड़ी मात्रा में खेती के लिए पानी की जरूरत है। ऐसे में पानी के बेहतर प्रबंधन की सख्त आवश्यकता है, ताकि भविष्य में पानी के संकट का मुकाबला किया जा सके। कुल मिलाकर हालात ऐसे हो गए हैं जो इस ओर इशारा कर रहे हैं कि आने वाले समय में जलसंकट और विकराल रूप लेगा। देश की बढ़ती आबादी के लिये पेयजल के अलावा बड़ी मात्रा में खेती के लिये पानी की जरूरत पड़ेगी। ऐसे में पानी के बेहतर प्रबन्धन की सख्त जरूरत है ताकि भविष्य में पानी के संकट का मुकाबला किया जा सके। भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की अर्थव्यवस्था खेती पर आधारित है इसलिये सिंचाई में ऐसी पद्धति का इस्तेमाल करना होगा जिससे पानी का बेहतर–से–बेहतर इस्तेमाल किया जा सके। भारत में जितनी खेती होती है उनमें से 60 प्रतिशत खेती ऐसे क्षेत्र में की जाती है जहाँ पानी की बेहद किल्लत है। इनमें से 30 प्रतिशत जगहों पर पर्याप्त बारिश नहीं होती है। हालांकि ऐसा नहीं है कि जलसंकट केवल भारत में ही है। भारत में खेती मुख्य रूप से बारिश पर निर्भर है। देश में 60–65 प्रतिशत खेती बारिश के पानी पर निर्भर है जिस तरह देश की आबादी में बढ़ोत्तरी हो रही है और कल कारखाने खुल रहे हैं, उससे आने वाले समय में पानी की घरेलू और औद्योगिक खपत बढ़ेगी जिसका परिणाम यह निकलेगा कि खेती के लिये पानी की किल्लत हो जाएगी। इस हालात में खेती को अगर बचाना है तो ऐसे विकल्पों पर विचार करना होगा जिसमें सिंचाई में पानी की बर्बादी न हो और पूरी कवायद में हाइड्रोजेल महत्त्वपूर्ण किरदार निभा सकता है।

हाइड्रोजेल

हाइड्रोजेल एक प्रकार का हाइड्रोफिलिक समूह के साथ क्रॉस–लिंक्ड पॉलीमर (बहुलक) है, जो पानी में घुले बिना ही बड़ी मात्रा में जल अवशोषित करने की क्षमता रखता है। हाइड्रोजेल में, जल अवशोषण की क्षमता हाइड्रोफिलिक कार्यात्मक समूहों के द्वारा ही उत्पन्न होती है। पॉलिमर हाइड्रोजेल वास्तव में, मिट्टी के माध्यम से मिट्टी की पारगम्यता, घनत्व, संरचना, बनावट और पानी के वाष्पीकरण तथा पानी के अंदर जाने की दर को प्रभावित करते हैं। तनाव के दौरान, हाइड्रोजेल पौधों को पानी और पोषक तत्व प्रदान करने का काम करते है। वैज्ञानिकों ने हाइड्रोजेल का विकास ग्वार फली से किया है, जो पूरी तरह से प्रातिक पॉलिमर है। इसमें पानी को सोख लेने की क्षमता होती है। मगर यह पानी में घुलता नहीं है। इसके अलावा हाइड्रोजेल बायोडिग्रेडेबल होता है, जिसके कारण प्रदूषण का भी खतरा नहीं रहता है।

हाइड्रोजेल की कार्य प्रणाली

जब मिट्टी में नमी की मात्रा कम होने लगती है तब हाइड्रोजेल का कार्य शुरू होता है। हाइड्रोजेल अपने कुल वजन का 300–500 गुना ज्यादा पानी अवशोषित कर सकता है। इसकी सबसे अच्छी बात यह होती है कि यह बार–बार जरूरत पडने पर शुष्क मिट्टी में जल को अवशोषित करके नमी बनाये रखता है तथा यह प्रकिया लम्बे समय तक चलती रहती है। जब फिर से पानी के संपर्क में आता है तो यह पानी को स्टोर करने की प्रक्रिया को दोहराता है। हाइड्रोजेल, मिट्टी में प्रथम इस्तेमाल के बाद 3–4 साल तक के लिए कारगर होता है तथा यह समय के साथ विघटित भी हो जाता है, जिससे मिट्टी के प्रदूषित होने के भी कोई संभावना नहीं होती है। हाइड्रोजेल 45–50 डिग्री सेल्सियस के तापमान में भी सुगमता से कार्य कर सकता है। बीज अंकुरण, किसी भी पौधे के प्रारंभिक विकास में सबसे महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। सफल अंकुरण पानी की उपलब्धता पर निर्भर करता है तथा मुख्य रूप से शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में मिट्टी के नमी के जरूरी स्तर को नियमित रूप से बनाये रखना आवश्यक होता है। हाइड्रोजेल पॉलिमर मिट्टी में अपनी जलधारण क्षमता के द्वारा, पौधों में जल तनाव की स्थिति को आने से रोकता है।

हाइड्रोजेल तकनीकी के महत्वपूर्ण बिन्दु

★ हाइड्रोजेल में अम्लीयता एवं क्षारीयता का अनुपात बराबर होता है जिससे मिट्टी में यह उदासीन होता है और कोई हानिकारक प्रतिक्रिया नहीं करता है।

★ उच्च तापमान में भी अच्छे से काम करता है, जिससे राजस्थान जैसे शुष्क क्षेत्रों के लिए बहुत ही उपयोगी है।

★ यह अपनी क्षमता से कई गुना अधिक जल को धारण कर सकते है, जो इन्हें शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए सबसे ज्यादा उपयोगी बनाती है।

★ हाइड्रोजेल मिट्टी के भौतिक गुणों जैसे– छिद्रता, घनत्व, जल धारण क्षमता, मिट्टी की पारगम्यता, तथा निकासी दर, आदि को बेहतर बनाता है।

★ हाइड्रोजेल मिट्टी में जैविक गतिविधियों को बढ़ाता है जो जड़ क्षेत्र में ऑक्सीजन की उपलब्धता को बढ़ाती हैं।

★ हाइड्रोजेल, बीज के अंकुरण तथा उसके उभरने की दर में भी सुधार करता है।

कितनी मात्रा में उपयोग करें

सर्वोत्तम परिणाम के लिए हाइड्रोजेल को बुवाई के समय प्रयोग करना चाहिए। यह बेहतर अंकुरण और जड़ फैलाव में मदद करेगा। हाइड्रोजेल को रेतीली मृदा में 2.5 किलोग्राम प्रति एकड़, 15 से 20 सेंटीमीटर की गहराई में प्रयोग किया जाना चाहिए। काली मृदा के लिए 2.0–5.0 किलोग्राम प्रति एकड़, 8 से 10 सेंटीमीटर की गहराई में प्रयोग किया जाना चाहिए। खेत को तैयार करने के बाद 2 किलोग्राम को 10 से 15 किलोग्राम महीन सूखी मृदा के साथ अच्छी तरह से मिलाना चाहिए। सम्पूर्ण मिश्रण को बीज के साथ ही खेतों में डालना चाहिए। इससे अच्छे परिणाम मिलने की संभावना है।

हाइड्रोजेल पॉलीमर के लाभ

★ हाइड्रोजेल पॉलीमर बीज की अंकुरण क्षमता को बढ़ाता है।

★ सीडलिंग के साथ हाइड्रोजेल मिलाने पर पौधा लगातार वृद्धि करता है।

★ पानी के वाष्पीकरण को रोकता है और मिट्टी में नमी को बनाए रखता है।

★ हाइड्रोजेल पॉलीमर के प्रयोग से 25 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

★ फफूंदीनाशक के साथ हाइड्रोजेल का प्रयोग करने से पौधे की जड़ों पर इसका असर लंबे समय तक रहता है।

★ पौधों का अच्छा विकास होता है फसल की पैदावार बढ़ती है।

ध पानी की कमी वाले क्षेत्रों में हाइड्रोजेल का प्रयोग खेत में पानी को दुरुस्त रखता है।

★ बलुई मिट्टी व ढलान वाली जगहों में हाइड्रोजेल का प्रयोग पानी को टिकाए रखता है।

★ हाइड्रोजेल पानी के साथ पोषक तत्वों को भी बांधे रखता है। इसे पौधे अपनी मर्ज़ी के मुताबिक लेते रहते हैं।

★ भूमि का कटाव बंद होने से मिट्टी की गुणवत्ता भी बढ़ जाती है।

हाइड्रोजेल तकनिकी की कुछ सीमाएं

★ खारी मिट्टी के लिए हाइड्रोजेल का उपयोग कुछ हद तक सीमित है जो उसकी जल धारण क्षमता में कमी का कारण हो सकता है।

★ हाइड्रोजेल की कीमत इसके उपयोग को सीमित बनाती है क्यूंकि छोटे किसान द्वारा इसे खरीदने में आर्थिक समस्या एक प्रमुख कारण है।

★ हाइड्रोजेल का प्रयोग आसुत जल साथ आदर्श माना गया है जबकि वास्तविकता में सिचाई जल में विभिन्न प्रकार के नमक एवं रसायन होते है जिससे उसकी क्षमता में कमी आती है।

दीमक का फसलो में प्रकोप एवं प्रबंधन

शिवानी चौधरी, विद्यावाचस्पति छात्रा (कीट विज्ञान विभाग) स्वामी केशवानंद राजस्थानकृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

इस बहुभक्षी कीट प्रकोप सभी तरह की फसलों, सब्जियों, फल वृक्षों व पेड–पौधों में होता है जिसमें से सलूलोज अधिक मात्रा में पाया जाता है। गेहूँ, जौ, चना, गन्ना, मूंगफली, मिर्च आदि फसलों में इस कीट का प्रकोप अधिक होता है। इनके श्रमिक भूमि में पौधों की जडों को काट देते हैं, जिससे पौधे सुखकर नष्ट हो जाते हैं। फरवरी–मार्च माह में यह कीट फसलों को अत्यधिक नुकसान पहूंचाता हैं। दीमक का प्रकोप फसल पकने की अवस्था में भी अधिक होता है जिससे उसके नुकसान की क्षति पूर्ति नहीं की जा सकती। पेड़–पौधों के तनों को दीमक क्षति पहुँचाती है, तनों पर मिट्टी चढा देती है जिससे तना खराब होकर पेड़ सूख जाते हैं। फल वृक्षों में यह आम, अमरूद, नींबू व अनार को अधिक नुकसान पहुँचाती है।

जीवन चक्र : इस कीट के जीवन में तीन अवस्थायें होती हैं–अण्डा, शिशु एवं वयस्क।

प्रबंधन :

1. दीमक से बचाव के लिए खेत में सड़ी गली गोबर की खाद डालनी चाहिए। गोबर की कच्ची व सुखी खाद दीमक का प्रिय भोजन होता है।
2. नीम की खली 30 कि.ग्रा./एकड़ की दर से बुआई के पहले खेत में डालना चाहिए।
3. 1.0 किग्रा ब्यूवेरिया बेसियाना मित्र फफूँद को 25 किग्रा गोबर की सड़ी हुई खाद में मिलाकर बुआई से पहले प्रति एकड़ खेत के हिसाब से डालनी चाहिए।
4. फसल की कटाई के बाद खेत की गहरी जुताई करें एवं खेत में बचे हुए फसल अवशेषों को एक जगह इकट्ठा कर कम्पोस्ट पिट में डाले।
5. फसलों की समय पर सिंचाई करे क्यों कि पानी की कमी होने पर पौधे सूख जाते हैं और दीमक के आक्रमण की सम्भवना बढ जाती हैं।
6. गन्ने व गेहूँ के स्थान पर प्याज व तम्बाकू की फसल बोयें जिसमें दीमक का प्रकोप कम होता है।
7. क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से अंतिम जुताई के समय मिट्टी में अच्छी तरह मिला देवें।

बीज उपचार:

1. गेहूँ व जौ के बीज को फिप्रोनिल 5 एस.सी. 6 मिली./क्लोथियानिडिन 50 डब्ल्यूडीजी 1.5 ग्राम/इमिडाक्लोप्रिड 600 एफ.एस. 1.5 मिली. प्रति किग्रा. की दर से उपचारित करें।
2. चने के बीज को फिप्रोनिल 5 एस.सी. 10 मिली. प्रति किग्रा. की दर

से उपचारित करें।

3. मूँगफली के बीज को 6.5 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड 600 एफ.एस. या 10 मि.ली. फिप्रोनिल 5 एस.सी. प्रति किग्रा. की दर से उपचारित करें।

खडी फसलों में दीमक का नियंत्रण :

1. गेहूँ व जौ में प्रति हैक्टेयर मिटटी के साथ मिलाकर पहली सिंचाई के साथ भुरकाव करें।
2. खडी फसलों में दीमक की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 300 मिली./फिप्रोनिल 5 एस.सी. 3.0 लीटर/क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. 4.0 लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से सिंचाई के साथ देवें।
3. फल वृक्ष लगाते समय गडढों में नीम की खली या क्यूनालफॉस 1.5 डस्ट 25 ग्राम प्रति गड्ढे के हिसाब से खाद में मिलाकर डालें।
4. फल वृक्षों के तनों पर दीमक लगने पर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. का घोल बनाकर ड्रेंचिंग करें।
5. फल वृक्षों के तने के पास जमीन में क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 ग्राम मिलावें।

सरसों के प्रमुख खरपतवार, रोग एवं प्रबन्धन

राज कुमार फगोडिया1, बाबू लाल फगोड़िया2 एवं श्योराम2
1 पादप रोग विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर
2 केन्द्रीय एकीकृत नाशी जीव प्रबन्धन केन्द्र, जयपुर, राजस्थान

सरसों क्रूसीफेरी (ब्रेसीकेसी) कुल का द्विबीजपत्री, एकवर्षीय शाक जातीय पौधा है। इसका वैज्ञानिक नाम ब्रेसिका कम्प्रेसटिस है। भारत में मूँगफली के बाद सरसों दूसरी सबसे महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है, जो मुख्यतया राजस्थान, पंजाब, मध्य प्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल एवं असम में उगायी जाती है। सरसों की अच्छी उपज के लिए समतल एवं अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट से दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है। सामान्यतः यह नवम्बर माह में बोई जाती है और मार्च–अप्रेल में इसकी कटाई होती है। इसके बीज से तेल निकाला जाता है, जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ बनाने में किया जाता है। इसका तेल आचार, साबुन तथा ग्लिसराल बनाने के काम आता है। तेल निकाले जाने के बाद प्राप्त खली मवेशियों को खिलाने के काम आती है। खली का उपयोग उर्वरक के रूप में भी होता है। सरसों की कम उत्पादकता के मुख्य कारण उपयुक्त किस्मों का चयन असंतुलित उर्वरक प्रयोग एवं पादप रोग व कीटों की पर्याप्त रोकथाम न करना आदि है।

प्रमुख रोग :

1. मृदुरोमिल आसिता या डाउनी मिल्ड्य : जब सरसों के पौधे 15 से 20 दिन के होते हैं तब पत्तों की निचली सतह पर हल्के बैंगनी से भूरे रंग के धब्बे नजर आते हैं बहुत अधिक नमी में इस रोग का कवक तने तथा स्टेग हैउ पर भी दिखाई दो है। यह रोग फूलों वाली शाखाओं पर अधिकतर सफेद रतुआ के साथ ही आता है।

प्रबन्धन : समय पर बुवाई (1–20 अक्टूबर) करें। बीज उपचार मेटालेक्जिल (एप्रॉन 35 एस.डी.) 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से करें। फसल बुवाई के दो महीने बाद या रोग के लक्षण दिखाई देने पर रिडोमिल एम.जेड. 72 डब्ल्यू.पी. का 2 प्रतिशत का 15 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

2. सफेद रतुआ या श्वेत किट्ट रोग : यह बीमारी पत्तों के निचले हिस्सों से शुरू होकर फूलों की कोपलों की ओर बढ़ना शुरू हो जाती है। जब तापमान 10–180 सेल्सियस के आसपास रहता है। तब पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंगके फफोले बनते है। यह दूधिया सफेद रंग में तने, टहनियों व फूलों की कोपलों को जकड़ लेती है, जिस कारण फूलों से फली बनना मुश्किल हो जाती है। रोग की उग्रता बढ़ने के साथ–साथ ये आपस मेंमिलकर अनियमित आकार के दिखाई देते हैं। पत्ती को उपर से देखने पर गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते है। रोग अधिकता में कभी–कभी रोग फूल एवं फली पर केकड़े के समान फूला हुआ भी दिखाई देता है।

प्रबन्धन : समय पर बुवाई (1–20 अक्टूबर) करें। बीज उपचार मेटालेक्जिल (एप्रॉन 35 एस.डी.) 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से करें। रिडोमिल एम.जेड. 72 डब्ल्यू.पी. अथवा मैंकोजेब 1250 ग्राम प्रति 500 लीटर पानी में घोल बनाकर 2 छिड़काव 10 दिन के अन्तराल से 45 एवं 55 दिन की फसल पर करें।

3. झुलसा या काला धब्बा रोग : पत्तियों पर गोल भूरे धबबे दिखाई पड़ते है। फिर ये धब्बे आपस में मिलकर पत्ती को झुलसा देते हैं एवं धब्बों में केन्द्रीय छल्ले दिखाई देते है। रोगके बढ़ने पर गहरे भूरे धब्बे तने, शाखाओं एवं फलियों पर फैल जाते है। फलियों पर ये धब्बे गोल तथा तने पर लम्बे होते है। रोगग्रसित फलियों के दाने सिकुड़े तथा बदंग हो जाते है एवं तेल की मात्रा घट जाती है। इस बीमारी के कारण पत्तों, फलियों व शाखाओं पर भूरे से काले रंग के गोलाकार धब्बे पड़ने शुरू हो जाते हैं।

4. तना सड़न रोग : तने के निचले भाग में मटमेले या भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते है रोग फसल पर फूल आने के बाद ही पनपता है। प्रायः यह धब्बे रूई जैसे सफेद जाल से ढके होते है। रोग की अधिकता में पौधा मुरझाकर या टूटकर नीचे की ओर लटक जाता है। रोगग्रस्त पौधे को चीरकर देखने पर काले रंग के स्केलेरोशिया दिखाई देते है।

प्रबन्धन : स्वस्थ व प्रमाणित बीज का ही उपयोग करें। बीजोपचार 3 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलो बीज की दर से करें। गर्मियों में गहरी जुताई करें व फसल के अवशेष नष्ट कर दें। सिफारिश से अधिक नाइट्रोजन न डालें। फसल में कतारों और पौधों के बीच की उचित दूरी रखें। फसल घनी न रखें। बीमारी का प्रकोप देखकर 0.1 प्रतिशत की दर से कार्बेन्डाजिम दवा फूल की अवस्था पर 10 दिन के अन्तराल में दो बार पत्तियों व तने पर छिड़काव करें।

5. पाउडरी मिल्ड्यू या छाछ्या रोग : यह रोग प्रारम्भिक अवस्था में पौधे की पत्तियों पर सफेद चूर्ण के रूप में दिखाई देता है। जो बाद में पूरे पौधे पर फैल जाता है। जिसके कारण पत्तियां पीली होकर झड़ जाती है। तापमान में बढ़ोतरी के कारण यह धब्बे आकार में बड़े हो जाते हैं।

प्रबन्धन : इस रोग के प्रबन्धन हेतु खड़ी फसल में 20–25 किलोग्राम गंधक का प्रति हैक्टेयर या 0.2 प्रतशत घुलनशील गंधक का छिड़काव करें या कैराथेन एल.सी. का 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 15 दिनों के बाद छिड़काव को फिर से करें।

प्रमुख खरपतवार : सरसों की फसल में मुख्यतः चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे बथुआ, हिरनखुरी, सत्यानाशी, मोथा और दुब घास आदि प्रमुख है। इन खरपतवारों के नियन्त्रण में समय का सर्वाधिक महत्व है। यदि खरपतवारों की रोकथाम अगर क्रांकित अवस्था में न की

गई तो उससे फसल को भरपूर लाभ नहीं मिल पाता है। सरसों में यह अवस्था बुवाई के बाद 10 दिन से 40 दिन तक रहती है। इसलिये यह आवश्यक है कि यदि हम शाकनाशी रसायनों का उपयोग कर रहे है तो उनका असर भूमि में कम से कम बुवाई के बाद 40 दिन तक रहना चाहिए।

खरपतवार रोकथाम की विधियाँ : सरसों में खरपतवार एक समस्या है यह पौधे मूल फसल की खुराक को खा जाते है उनके बढ़ोतरी पर प्रभाव डालते है। इनके नियन्त्रण के लिए विभिन्न रूपों से कुछ विधियाँ है अगर किसान भाई इन्हें अपनाये तो इन पर आसानी से काबू पाया जा सकता है। साथ ही फसल की गुणवत्ता मेंबढ़ोतरी की जा सकती है। शाकनाशी रसायनों के प्रयोग से जहां एक ओर खरपतवारों का प्रभावी नियन्त्रण किया जा सकता वहीं दूसरी ओर लागत कम आती है तथा समय की बचत होती है। शाकनाशी रसायनों में ध्यान देने योग्य बात यह होती है कि उनका प्रयोग सही समय पर उचित मात्रा में ठीक ढंग से होना चाहिये अन्यथा लाभ की बजाय नुकसान उठाना पड़ सकता है। प्रमुख खरपतवार नाशी बौक्सा डायजोन को बोने के बाद परन्तु उगने से पहले 600 लीटर पानी में 750 ग्राम सक्रिय तत्व का घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से स्प्रे करना चाहिये।

जौ उत्पादन के बारे में जानकारी

गिरधारी लाल यादव1 एवं डॉ. एस. एस. राजपूत2
1विद्यावाचस्पति शोधार्थी, 2सहायक आचार्य, पादप प्रजनन एवं आनुवंशिकी विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान) 303329

जौ का महत्व : जौ भारत की एक महत्वपूर्ण रबी फसल है, जौ कि उत्तर भारत में मुख्य रूप से बोई जाती है, जिसे गेहूं की तुलना में कम पानी की आवश्यकता होती है। जौ का उपयोग प्राचीनकाल से ही मनुष्यों के भोजन और पशुओं के दाने के रूप में होता आ रहा है। हमारे देश में जौ का उपयोग रोटी बनाने में किया जाता है। जौ को भूनकर या पीसकर सत्तू के रूप में भी उपयोग किया जाता है। इसके अलावा जौ का उपयोग माल्ट के लिए किया जाता है तथा यह शराब बनाने के भी काम आता है। हमारे देश में जौ का अधिक उपयोग दाने, पशु आहार, चारा और अनेक औद्योगिक उपयोग जैसे शराब, बेकरी, पेपर, फाइबर बोर्ड आदि के लिए किया जाता है। इसके दाने में 10.6 प्रतिशत प्रोटीन, 64 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 2.1 प्रतिशत वसा होता है।

जलवायु एवं भूमि : जौ एक शीतोष्ण जलवायु की फसल है जौ की खेती केलिए ठण्डी और नम जलवायु उपयुक्त रहती है। इसकी बुवाई के समय 25 से 30 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान उपयुक्त माना जाता है। इसकी खेती के लिए बलुई दोमट या दोट भूमि सर्वोत्तम मानी जाती है। इसकी बुवाई क्षारीय और लवणीय भूमि में भी कर सकते हैं।

भूमि की तैयारी : जौ के अच्छे उत्पादन के लिए खेत की तैयारी अच्छी प्रकार करनी चाहिए। खेत की तैयारी करने के लिए एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व 2–3 जुताईयां देशी हल या हैरो से करते हैं। ढेले तोड़ने व नमी की सुरक्षा के लिए खेत में पाटा लगाना अति आवश्यक है।

उन्नतशील किस्में : बी.एल.2, आर.डी. 31, आर.डी. 57, आर.डी. 103, आर.डी. 387, आर.डी. 2035, आर.डी. 2552, आर.डी. 2624, आर.डी. 2660, आर.डी. 2715, आर.डी. 2899, आर.डी. 2907, ज्योति, आजाद, नरेन्द्र जौ–2, नरेन्द्र जौ–5, नरेन्द्र जौ–192, कैलाश, डोलमा, करण–3।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार : जौ के लिए समय पर की बुवाई करने पर 100 किग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर की जरूरत होती है। अगर बुवाई देरी से की गई है, तो बीज की मात्रा 125 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की जरूरत होती है। बीजों को बुवाई से पहले कैप्टान, बाविस्टीन 2.5 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज से उपचारित करके ही बोना चाहिए।

बुवाई का समय व तरीका : इसकी बुवाई का उचित समय नवम्बर के पहले सप्ताह से आखिरी सप्ताह तक की जा सकती है, लेकिन देर से बुवाई मध्य दिसम्बर तक की जा सकती है। जौ की फसल बुवाई में कतार से कतार की दूरी 22.5 सेन्टीमीटर व पौधे से पौधे की दूरी 10 सेन्टीमीटर रखते हैं।

जौ की फसल की बुवाई के निम्नलिखित तरीक हैं।

1. **छिड़काव विधि द्वारा :** इस विधि में जौ के बीजों को खेत में छिड़क देते है, और फिर बीजों को मिट्टी से ढ़कने के लिए गहरी जुताई की जाती है। यह बीज बुवाई की उत्तम विधि नहीं हैं, किन्तु भारत में इस विधि को सबसे अधिक अपनाया जाता है। अस विधि में बीजों की मात्रा अधिक लगतीहै।
2. **सीडड्रिल द्वार बुवाई :** इस विधि को बुवाई के लिए सबसे उत्तम कहा गया है। इसमें ट्रेक्टर या बैलों द्वारा सीडड्रिल चलाकर बीजों की बुवाई की जाती है। इसमें पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी एक समान रहती है तथा बुवाई मेंकम समय लगता है।
3. **डिबिलर विधि :** इस विधि में बीज कम लगते हैं। लेकिन मेहनत अधिक लगती है। यदि बीजों की मात्रा कम हो तो इस विधि को अपनाया जाता है।

खाद व उर्वरक : खेत की तैयारी करते समय 8 से 10 टन गोबर की खाद डालकर अच्छी प्रकार से मिट्टी में मिला देना चाहिए। सिंचित फसल के लिए 60 किलाग्राम नाइट्रोजन, 40 किलाग्राम फॉस्फोरस और 30 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। असिंचित क्षत्रों के लिए 40 किलाग्राम नाइट्रोजन, 40 किलोग्राम फॉस्फोरस आग्र 30 किलाग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर मात्रा पर्याप्त होती है।

सिंचाई : जौ की अच्छी उपज के लिए 4 से 5 सिंचाई पर्याप्त होती है। पहली सिंचाई बुवाई के 25 से 30 दिन बाद करनी चाहिए। दूसरी सिंचाई 40 से 45 दिन बाद करनी चाहिए। इसके बाद तीसरी सिंचाई फूल आने पर करनी चाहिए। चौथी सिंचाई दाना दूधिया अवसीा में आने पर करनी चाहिए। खेतों में जल–निकास की उचित सुविधा होनी चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रण : खेतों में यदि खपरपतवार का प्रकोप अधिकदिखाई दे तो निराई कर सकत हैं। रसायनों के प्रयोग द्वारा भी जौ की फसल से खरपतवार का नियन्त्रण किया जा सकता है। 2, 4–डी की 0.50 किलोग्राम सक्रिय मात्रा 600–800 लीटर पानी में घोलकर, बुवाई के 30–35 दिन बाद, खेतों में छिड़काव करने से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार नष्ट हो जाते हैं।

फसल संरक्षण :

प्रमुख कीट : दीमक, गुजिया, वीविल, माहू

जौ की बुवाई से पहले दीमक के नियन्त्रण हेतु क्लोरपाईरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. की 3 मिली. प्रति लीटर किग्रा. बीज की दर से बीज को शोधित कना चाहिए। खड़ी फसल में दीमक या गुजिया के नियन्त्रण हेतु क्लोरिपाईरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. 2.5 लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से सिंचाई के पानी के साथ प्रयोग करना चाहिए। माहू कीट के नियन्त्रण के लिए डाईमेथोएट 30 प्रतिशत ई.सी. के 1.0 लीटर प्रति हैक्टेयर लगभग 750 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख रोग :– आवृत कंडुवा, पत्ती का धारीदार रोग, गेरूई रोग

आवृत कंडुवा, पत्ती का धारीदार रोग के नियन्त्रण के लिए कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम अथवा कार्बोक्सिन 75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. की 2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से बीज शोधन कर बुवाई करना चाहिए।

कटाई व मड़ाई : गेहूं की फसल से जौ की फसल जल्दी पक जाती है। मार्च के अन्तिम सप्ताह तक फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। फसल पकने के तुरन्त बाद ही कटाई कर लेनी चाहिए नहीं तो फसल के दाने खेत में झड़ने लगते हैं। फसल की कटाई हंसिया से या बड़े फार्म पर कम्बाइन हार्वेस्टर से करते हैं। दानों में 20–30 प्रतिशत नमी रहने पर कटाई करते हैं। इसके बाद 4–5 दिन तक फसल को खलियान में सुखाकर मड़ाई बैलों द्वारा या पावर थ्रेसर द्वारा कर लेते हैं।

उपज : उन्नत तकनीक से जौ की खेती की जाए तो एक हैक्टैयर क्षेत्र में 35 से 40 क्विंटल दाने प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके अलावा 50 से 55 क्विंटल भूसे की उपज प्राप्त की जा सकती है। असिंचित क्षेत्रों में 15 से 20 क्विंटल दाना व 25 से 30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर भूसे की उपज प्राप्त की जा सकती है।

भण्डारण : जौ के दाने में जब 10–12 प्रतिशत नमी बचे तब सुरक्षित स्थानों पर भण्डारण में सुरक्षित रख देते हैं।

बेर में कीट व रोगों का प्रबंधन

भवानी सिंह मीना1 एवं सुनील कुमार मीना2
1कीट विज्ञान विभाग, 2प्रसार शिक्षा विभाग
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

बेर एक बहुउपयोगी फलदार पौधा है। इसके फलों को मानव अपने खाने के लिये और पत्तों का प्रयोग पशु चारे के रूप में करता है। इसकी लकड़ी जलाने एवं टहनियाँ एवं छोटी शाखायें खेत पर बाड़ बनाने में एवं तना उपयोगी फर्नीचर बनाने के काम आता है। बेर की फसल में कई प्रकार के रोग लगते है। समय पर रोग व कीटों का नियंत्रण करके किसान बेर से अच्छी आमदनी ले सकते है।

प्रमुख कीट

फल मक्खी

यह बेर को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाने वाला कीट है। 80 प्रतिशत तक फलों को नुकसान करके पूरी फसल को नष्ट कर सकता है। यह एक मक्खी होती है, जिसका प्रयोग फल बनते समय प्रारम्भ हो जाता है व फल परिपक्व होने तक रहता है। मादा मक्खी फल की त्वचा में एक–एक कर अण्डे देती है। सामान्यतः एक फल में एक अण्डा देती है। अण्डों से 2–5 दिन में लट निकलकर फल का गुदा खाता हुआ फल में आगे बढ़ता है तथा फल के अन्दर सुरंग बना देता है। सुन्डी की विष्ठा फल के अन्दर सुरंग दिखाई देती हैं विष्ठा के कारण फल सड़ जाते है। प्रभावित फल टेडे–मेड़े होकर खराब हो जाते है व उपयोग के योग्य नहीं रहते। लटें अन्दर से पूरा फल खाने के बाद बाहर आ जाती है। इसके बाद यह मिट्टी में प्यूपा के रूप में छिपी रहती है। कुछ दिन बाद इससे मक्खियाँ बनकर तैयार हो जाती हैं तथा इनका आक्रमण फलों पर पुनः शुरू हो जाता है।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु बाग के आस–पास के क्षेत्र से बेर की जंगली झाड़ियों को हटा देवें। प्रभावित फलों को इक्ट्ठा करके नष्ट कर देवें। मोनोक्रोटोफॉस 38 एसएल या डायमिथोएट 30 ई.सी. कीटनाशी 1 मि. ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर पहला छिड़काव फूल आते समय, दूसरा छिड़काव फल मटर के आकार के हो तथा तीसरा छिड़काव दूसरे छिड़काव के 15 से 20 दिन बाद करें।

छाल भक्षक कीट

यह कीट पेड़ की छाल को खाता है तथा छिपने के लिये अन्दर डाली में गहराई तक सुरंग बना लेता है, जिससे कभी–कभी डाली/शाखा कमजोर हो जाती है।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु सूखी शाखाओं को काट कर जला देवें। मैलाथियान 50 ई. सी 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर शाखाओं तथा पत्तियों पर छिड़के साथ ही सुरंग को साफ करके पिचकारी की सहायता से केरोसीन 3 से 5 मिलीलीटर प्रति सुरंग डाले या उसका फोहा बनाकर सुरंग के अन्दर रख देवें और बाहर से गीली मिट्टी से बंद कर दें। समन्वित कीट नियंत्रण विधि में बेर के थावालों में मिट्टी खोदकर प्रति थावला 50 से 100 ग्राम क्युनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण मिलाये व वर्षा प्रारम्भ होने पर मानोक्रोटोफॉस 0.05 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें, साथ ही जब बेर मटर के दाने जैसा हो जाये तो तीन छिड़काव 15 – 15 दिन के अन्तराल पर करें।

प्रमुख रोग

छाछ्या (पाएडरी मिल्ड्यू या चूर्णी फंफूद)

यह रोग अधिक नमी की स्थितियों के अधिक नुकसान पहुँचाता है।

इससे बेर की टहनियाँ, पत्तियाँ एवं फल सफेद कवक आवरण से ढंक जाते है। प्रभावित पत्तियों एवं फलों की वृद्धि रूक जाती है और फल गिर जाते है।

नियंत्रण

इसके नियंत्रण के लिये कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का एक छिड़काव फूल आने से पहले और फल बनने के बाद 15 – 15 दिन के अन्तराल से दो छिड़काव करने चाहिये।

जड़ गलन

इस रोग का पौधों की जड़ों तथा भूमि के पास वाले तने के भाग पर आक्रमण होता है। पौधे सूख जाते है।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु बीज को थाइरम 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके नर्सरी में बोयें।

कजली फंफूद (सूटी मोल्ड)

यह रोग एक प्रकार की फंफूद इंजारियोपसिस इण्डिका द्वारा फैलता है। रोग ग्रसित पत्तियों की नीचे की सतह पर कहीं–कहीं काले धब्बे दिखाई देने लगते है जो कि बाद में पूरी सतह पर फैल जाते है और पत्ती कजली (कालिख) की तरह दिखाई देने लगती है तथा रोगी पत्तियाँ गिर जाती है।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु रोग के लक्षण दिखाई देते ही मैन्कोजेब 3 ग्राम या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर छिड़काव करें एवं आवश्यकता पड़ने पर उपचार के 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव पुनः दोहरायें।

पत्ती धब्बा/झुलसा रोग

यह रोग एक प्रकार की फफूंद आल्टरनेरिया आल्टरनेटा द्वारा फैलता है। रोग ग्रसित पत्तियों पर छोटे–छोटे भुरे रंग के धब्बे बनते है तथा बाद में यह धब्बे भूरे रंग के तथा आकार में बढ़कर पूरी पत्ती पर फैल जाते है। पत्तियाँ सूखकर गिरने लग जाती है।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु रोग दिखाई देते ही मैन्कोजेब 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर दो से तीन छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करें।

डॉ. सुदेश कुमार
प्रसार शिक्षा निदेशक

निदेशक की कलम से

जनवरी माह में कृषि कार्य

प्रिय किसान भाईयों,

1. सरसों में माहू (चेंपा) के नियंत्रण हेतु डाइमेथोऐट 30 ई.सी. एक मिली प्रति लीटर दवा का छिड़काव करें या नीम की निम्बोली 5 प्रतिशत का छिड़काव करें तथा झुलसा, तुलासिता व सफेद रोली रोग के नियंत्रण हेतु 45, 60 व 75 दिन पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 या मेंकोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यू पी. 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।
2. गेहूँ की फसल में फुटान की अवस्था (40–45) पर एवं चने की फसल में फलियां आने 80–90 दिन की अवस्था पर दूसरी सिंचाई करें।
3. चने में फली छेदक कीट के नियंत्रण हेतु लगभग 50 प्रतिशत फूल आने पर एन.पी.वी 250 एल.ई. प्रति हैक्टैयर का छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद बेंसीलस थूरेन्जिन्सिस का 1.5 लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से एवं तीसरा छिड़काव आवश्यकता हो तो एन.पी.वी का करें। क्यूनालफॉस 25 ई.सी. 2 मिली प्रति लीटर या मेलाथियान 50 ई. सी. 1 मिली प्रति लीटर दवा का आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।
4. पाला पड़ने के प्रति सचेत रहे। एकाएक शाम के समय तेज ठण्ड पड़ना, आसमान साफ होना, हवा का रूकना एवं आर्द्रता कम होना आदि पाला पड़ने के संकेत है। पाले के प्रति संवेदनशील फसलें जैसे सरसों, आलू, मटर, टमाटर, बैंगन इत्यादि को पाले बचाने के लिये खेत की मेड़ों पर धुआं करें या फव्वारा द्वारा हल्की सिंचाई करें। घुलनशील गंधक (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) या थायोसेलिसिक अम्ल (0.1 मिली प्रति लीटर पानी) के घोल का फूल आते समय एवं फलियां बनते समय छिड़काव करें।
5. आंवला के पौधे में इस माह पांच या इससे अधिक वर्ष के उम्र वाले पौधों में गोबर की खाद 50 किला, यूरिया 1100 ग्राम, सिंगल सुपर फॉस्फेट 1. 75 किलो व म्यूरेट ऑफ पोटाश 375 ग्राम प्रति पैधों के हिसाब से मिलावें व सिंचाई करें।
6. टमाटर में फल छेदक कीट के नियंत्रण हेतु निम्बोली के 5 प्रतिशत घोल या एन.पी.वी. 250 एल.ई. या बी.टी. के 750 ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें या क्लोरेन्ट्रानिलीप्रोल 18.50 ई.सी. का 0.5 मिली प्रति लीटर के हिसाब से छिड़काव करें।
7. आम, अमरूद व अनार में मिली बग कीट का प्रकोप दिखाई देने पर डाइमेथोएट 30 ई.सी. का 1.0 मिली प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।
8. पशुओं में खुरपका–मुहँपका रोग व भेड़ बकरियों में छोटी माता से बचाव के टीके लगावें।

प्रमुख संरक्षक : डॉ. बलराज सिंह
संरक्षक : डॉ. सुदेश कुमार
प्रधान सम्पादक : डॉ. सन्तोष देवी सामोता
श्री बी. एल. आसीवाल
डॉ. बसन्त कुमार भींचर
तकनीकी परामर्श : डॉ. एम.आर. चौधरी
डॉ. आर. पी. घासोलिया
डॉ. डी. के. जाजोरिया

बुक पोस्ट

डाक टिकट

पत्रिका सम्बन्धी आप अपने सुझाव, आलेख एवं अन्य कृषि सम्बन्धी नवीनतम जानकारियाँ हमारे मेल jobnerkrishi@sknau.ac.in पर भेजे।

प्रकाशक एवं मुद्रक : निदेशालय, प्रसार शिक्षा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के लिए अम्बा प्रिन्टर्स, जोबनेर से मुद्रित।